महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय

मानविकी एवं भाषा संकाय
संस्कृत-विभाग

एम.ए. द्वितीय सत्र
प्रश्न पत्र- चतुर्थ
पाठ्यशीर्षक- योगदर्शनम्
कोड-SNKT 2004

उपशीर्षक : श्रीमद्भगवद्गीता में भक्तियोग

प्रस्तुत कर्ता
डॉ.बबलू पाल
सहायक आचार्य

भगवद्गीता में भक्ति

यद्यपि श्रीमद्भगवद्गीता के बारहवें अध्याय का नाम ही भक्तियोग है जिसमें भक्तियोग की विस्तृत चर्चा की गई है। किन्तु कुछ अन्य अध्यायों में भी भक्ति का उल्लेख मिलता है,अत: उनमें से प्रमुखत: निम्न अध्यायों का विवरण उल्लेखनीय है-

द्वादश अध्याय- भक्तियोग।

नवम अध्याय- भक्ति का स्वरूप, पर्याय,सगुण एवं एकत्वभाव रूप से उपासना का वर्णन आदि।

दशम अध्याय- परमेश्वर की विभूतियों का प्राधान्य रूप से निरूपण।

अष्टादश अध्याय- भक्ति के फल का वर्णन आदि।

एकादश अध्याय- भक्ति से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति आदि का वर्णन।

भक्ति का स्वरूप

श्रीमद्भगवद्गीता में भक्तिर को ’गुह्यतम्’ कहा गया है-

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे। भगवद्गीता-९/१

भक्ति के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहा गया है-

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नुमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायण:॥ भगवद्गीता-९/३४

भक्तियोग के अन्य नाम

श्रीमद्भगवद्गीता में भक्तियोग को अन्य नाम से भी अभिहित किया गया है-

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।

प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥ भगवद्गीता- ९/२

राजविद्या,राजगुह्य,परम पवित्र,उत्तम,प्रत्यक्ष विषयवाला,धर्ममय;सुखपूर्वक अनुष्ठान किये जाने योग तथा अविनाशी भी कहा गया है।

भक्ति की उत्पत्ति के विरोधी पापों को नष्ट करने वाले उपाय

भक्ति की उत्पत्ति के विरोधी पापों को नष्ट करने का उपाय बतलाते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है- मोह से रहित जो भक्त मुझे अजन्मा,अनादि और लोकों का महेश्वर जानता है,वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। इस सन्दर्भ में गीता के दशवें अध्याय में कहा गया है-

योमामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।

असम्मूढ: स मर्त्येषु सर्वपापै: प्रमुच्यते॥ भगवद्गीता-१०/३

भक्ति की वृद्धि के प्रकार

भक्त्योत्पत्ति के विरोधी पापों के नाश हो जाने पर यथार्थ भक्ति की उत्पत्ति होती है,अत: इसका प्रतिपादन करने के पश्चात भक्ति वृद्धि के प्रकार का प्रतिपादन भी सर्वथा प्रासङ्गिक होने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से भक्ति की वृद्धि के प्रकार को बतलाते हुए कहते हैं-

बुद्धिर्ज्ञानसम्मोह: क्षमा सत्यं दम: शम:।

सुखंदु:खं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च॥ भगवद्गीता-१०/४

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयश:।

भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधा॥ भगवद्गीता-१०/५

परमेश्वर के विभूति स्वरूप का ज्ञानी भक्तियोग युक्त पुरुष

भक्ति योग से युक्त पुरुष के विषय में वर्णन करते हुए भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है-

परमेश्वर की विभूतियों का ज्ञान तथा कल्याणकारी गुणयुक्तों का ज्ञान भक्तियोग को बढाने वाला होता है।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वत:।

सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशय:॥ भगवद्गीता-१०/७

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्त: प्रवर्तते।

इति मत्त्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विता:॥ भगवद्गीता-१०/८

स्पृहायुक्त भक्तगणों की भक्ति

अत्यन्त स्पृहाभाव से जो भक्त परमेश्वर में लीन रहते हैं वे परमेश्वर के स्वरूप को जान लेते हैं और उसी में रमण करते हैं। भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं - अत्यन्त स्पृहाभाव से जो मेरा भजन करते हैं वे अतिशय प्रिय आनन्द को प्राप्त करते हैं।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्त: परस्परम्।

कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ भगवद्गीता-१०/९

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ भगवद्गीता-१०/१०

भक्तियोग से बुद्धि योग की प्राप्ति

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्भक्ति से बुद्धियोग जिसे सांख्य या ज्ञानयोग भी कहा गया है,की प्राप्ति हो जाती है,को बतलाते हुए भक्ति की विशिष्टता का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं-

इस ज्ञान दीप से ही समस्त अज्ञान रूपी अन्धकार का भी नाश हो जाता है।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ भगवद्गीता-१०/१०

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।

नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ भगवद्गीता-१०/११

भक्तियोग से आत्मतत्त्वरूप परमेश्वर का ज्ञान

भक्तियोग की महिमा का वर्णन भगवान् श्रीकृष्ण से सुनने के पश्चात् अर्जुन उनसे पूछता है कि आपके चिन्तन में निरत भक्तियोगी आप को कैसे जान सकते हैं,अर्थात् आप किन-किन भावों में चिन्तन किये जाने योग्य हैं?

कथं विद्यामहं योगी त्वां सदा परिचिन्तयन्।

केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया॥ भगवद्गीता-१०/१७

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।

भूय: कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्॥ भगवद्गीता- १०/१८

अर्जुन द्वारा प्रश्न किये गये परमेश्वर के विविध भावों अर्थात् कल्याणमयी विभूतियों को प्रधान रूप से श्रीकृष्ण बतलाते हैं-

हन्त ते कथयिष्यामि विभूतीरात्मन: शुभा:।

प्राधान्यत: कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे॥ भगवद्गीता- १०/१९

आत्मरूपस्थ परमेश्वर की विभूतियाँ

मैं अपनी कल्याणमयी विभूतियों को प्रधानता से कहुँगा, क्योंकि विभूतियों के विस्तार का अन्त नहीं है,इस प्रकार अर्जुन से कहने के पश्चात् अपने विविध भावों अर्थात् विभूतियों का वर्णन श्रीकृष्ण करते हैं, जिनका संक्षिप्त रूप से विवेचन निम्न रूप से द्रष्टव्य है-

अहमात्मा गुणाकेश सर्वभूताशयस्थित:।

अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥ भगवद्गीता-१०/२०

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं को आदित्यों में विष्णु, ज्योतियों में किरणों वाला सूर्य,मरुतों में मरीचि और नक्षत्रों में चन्द्रमा बताया है-

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।

मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी॥ भगवद्गीता-१०/२१

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासव:।

इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना॥ भगवद्गीता-१०/२२

रूद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।

वसूनां पावकश्चास्मि मेरु: शिखरिणामहम्॥ भगवद्गीता- १०/२३

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।

सेनानीनामहं स्कन्द: सरसामस्मि सागर:॥ भगवद्गीता-१०/२४

महर्षिणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।

यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालय:॥भगवद्गीता-१०/२५

अश्वत्थ: सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारद:।

गन्धर्वाणां चित्ररथ: सिद्धानां कपिलो मुनि:॥ भगवद्गीता-१०/२६

उच्चै: श्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।

ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्॥ भगवद्गीता-१०/२७

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।

प्रजनश्चास्मि कन्दर्प: सर्पाणामस्मि वासुकि:॥ भगवद्गीता-१०/२८

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।

पितृणामर्यमा चास्मि यम: संयतामहम्॥ भगवद्गीता-१०/२९

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां काल: कलयतामहम्।

मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥ भगवद्गीता-१०/३०

पवन: पवतामस्मि राम: शस्त्रभृतामहम्।

झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी॥ भगवद्गीता-१०/३१

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।

अध्यात्मविद्या विद्यानां वाद: प्रवदतामहम्॥ भगवद्गीता-१०/३२

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्व: सामासिकस्य च।

अहमेवाक्षय: कालो धाताहं विश्वतोमुख:॥ भगवद्गीता-१०/३३

मृत्यु: सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्ति: श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृति: क्षमा॥ भगवद्गीता-१०/३४

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकर:॥ भगवद्गीता-१०/३५

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्॥ भगवद्गीता-१०/३६

वृष्णीनां वासुदेवोस्मि पाण्डवानां धनञ्जय:।
मुनीनामप्यहं व्यास: कवीनामुशना कवि:॥ भगवद्गीता-१०/३७

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्॥ भगवद्गीता-१०/३८

अपनी विभूतियों की अनन्तता के विस्तार को बतलाये हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं मैनें तुमसे अपनी जिन विभूतियों के विषय में बतलाया है उसके अतिरिक्त भी मेरी विभूतियाँ हैं अत: अपनी विभूतियों की विशिष्टता को ही मैंने तुमसे कहा है, जैसाकि पूर्व में ही मैंने कहा है- ’प्राधान्यत: कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे’।सम्पूर्ण विभूतियों का वाचन करना उचित न समझ कर उन विभूतियों का उपसंहार करते हुए कहते हैं-

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।

न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥ भगवद्गीता-१०/३९

भक्ति के प्रकार

श्रीमद्भगवद्गीता में अपरा एवं परा-भक्ति का प्रमुखता से वर्णन किया गया है जिसका संक्षिप्त रूप से विवेचन निम्न रूप से द्रष्टव्य है-

श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्मभूतयोगी को पराभक्ति प्राप्त होने का वर्णन गीता के अट्ठारहें अध्याय में किया गया है-

परा भक्ति :

ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ भगवद्गीता-१८/५४

भगवद्गीता में अन्यत्र भी परमेश्वर की परा प्रकृति का वर्णन करहे हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है-

इतस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। भगवद्गीता-७/५

अपरा भक्ति :

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥भगवद्गीता-७/५

उपासना विधि

अर्जुन श्रीकृष्ण से पूछता है कि जो आपकी उपासना में लगे हुए हैं और जो अव्यक्त रूप अक्षर की उपासना करते हैं उन दोनों में उत्तम योगवेत्ता कौन है? अर्जुन के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं-

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मता:॥ भगवद्गीता-१२/२

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।

सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥ भगवद्गीता-१२/३

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धय:।

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रता:॥ भगवद्गीता-१२/४

सगुण एवं एकत्वभावरूप में परमेश्वर की उपासना

विश्वतोमुख परमेश्वर की सगुण एवं एकत्वभावरूप से उपासना विधि का वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

सगुण रूप से उपासना :

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रता:।

नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्तो उपासते॥ भगवद्गीता-९/१४

एकत्वभावरूप से उपासना :

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।

एकत्वेन पृथक्त्वेन विश्वतोमुखम्॥ भगवद्गीता-९/१५

भगवत् प्रिय भक्त

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि किस प्रकार का भक्त उन्हें प्रिय,अत्यन्त प्रिय है और अन्य भक्त भी किस रूप में प्रिय हैं।

फलाभिसन्धिरहित कर्मनिष्ठा ही भक्ति निष्ठा की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ है,अत: ऐसे पुरुष प्रिय हैं। इसका वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं-

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्र: करुण एव च।

निर्ममो निरहङ्कार: समदु:खसुख: क्षमी॥ भगवद्गीता-१२/१३

सन्तुष्ट: सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चय:।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्त: मे प्रिय:॥ भगवद्गीता-१२/१४

सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्त: स मे प्रिय:। भगवद्गीता-१२/१६

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्य: स मे प्रिय:। भगवद्गीता-१२/१७

परमेश्वर का अत्यन्त प्रिय भक्त

आत्मनिष्ठ मनुष्य की अपेक्षा भगवद्भक्ति योग निष्ठ मनुष्य की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने के पश्चात् अपने अत्यन्त प्रिय भक्त का उपसंहार रूप में उल्लेख करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।

श्रद्दधाना मत्परा भक्तास्तेऽतीव मे प्रिया:॥ भगवद्गीता-१०/२४

यहां 'धर्म्यामृतम्' का अर्थ है- धर्मानुकूल और अमृत। तात्पर्य यह है कि प्राप्य भगवान् के समान ही उसकी प्राप्ति कराने वाले- मय्यावेश्य मनो मे माम्...१२/२ द्वारा बताये हुए विधि से साधना करते हैं,वे भक्त मुझे अतिशय प्रिय हैं।

भक्ति का फल

भक्ति का फल बतलाते हुए गीता के अट्ठारहवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वत:।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥ भगवद्गीता-१८/५५

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥ भगवद्गीता-११/५४

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।

श्रद्धावान्भजन्ते यो मां स मे युक्ततमो मत:॥ भगवद्गीता-६/४७

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥भगवद्गीता-९/२९

धन्यवाद